

उषा

आशीर्वचन

आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र

भारतीय साहित्य शास्त्र की व्यवस्था के अनुसार किसी कथाबंध वाली साहित्य शाखा की पारस्परिक भेदकता के तीन तत्त्व माने गए हैं --- वस्तु, नेता और रस । वस्तु की भेदकता कई प्रकार की होती है । ख्यातवृत्त, कल्पितवृत्त और मिश्रवृत्त के रूप में एक ओर कथा की प्रसिद्धि और अप्रसिद्धि को उसका व्यावर्तक माना गया है तो दूसरी ओर संधियों के न्यूनाधिक्य को आधार कहा गया है । संधियों की कमी से कथा में घटनात्मक विस्तार कम हो जाता है । नेता में वृत्तिगत विविधता और श्रृंगार रस में, स्वभाव धर्म आदि के कारण, अनेकता होती है । रस के सम्बन्ध में किसी प्रधान या गौण रस की अवस्थिति के कारण भिन्नता आ जाती है । पर शास्त्र के इन तत्त्वों में से किसी के विधान में प्रातिभ कवि स्वच्छंद आचरण भी करते आये हैं । केवल रस की अभिव्यक्ति में ऐसी स्वच्छंदता उन्होंने नहीं या कम बरती जिससे परम्परा का अधिक विच्छेद हो जाय । पर अन्य दो तत्त्वों के विच्छेद में उन्होंने स्वातंत्र्य से काम लिया है । शास्त्राचार्यों ने इसके लिए छूट भी दे रखी थी पर रसाभिव्यक्ति को अपेक्षित ही माना था । भारतीय साहित्य परम्परा में रस का विच्छेद अमान्य था ।

कालिदास ने मेघदूत में कथा का सूत्र क्षीण रखा, श्रीहर्ष ने नैषधचरित ऐसे महत् काव्य में कथा का घटनात्मक रूप अल्प रखा । रघुवंश में पूरा वंश नायक हो गया । मृच्छकटिक में दरिद्र नायक स्वीकृत हुआ । पर श्रृंगार आदि रसों के विधान का विच्छेद फिर भी नहीं हुआ । भारतीय साहित्य शास्त्र के आचार्यों ने स्वच्छंदता को कभी अवरुद्ध नहीं किया । रस से विच्छेद न मानते हुए भी कतिपय आचार्यों ने उसकी गौण स्थिति कम से कम काव्य के क्षेत्र में स्वीकार

कर ली थी। कुंतक ने वक्रोक्ति को काव्य का जीवित घोषित किया और दंडी ने भी वाङ्मय को दो प्रकार का बतलाया --- वक्रोक्तिमूलक और स्वभावोक्तिमूलक। दंडी का तात्पर्य निश्चय ही वक्रोक्ति या स्वभावोक्ति अलंकार से नहीं है। पर भारतीय साहित्य शास्त्र में वक्रोक्ति का तो पर्याप्त कथन हुआ किन्तु स्वभावोक्ति का विस्तृत विमर्श नहीं हो सका। रसविमर्श और फिर व्यंजनाविमर्श में उनकी इतनी प्रवृत्ति रही कि वाङ्मय के इस रूप के विवेचन में किसी आचार्य ने वह उत्साह नहीं दिखाया जो अन्यत्र स्पष्ट दिखाई पड़ा। काव्य और नाटक के मानदंड एक ही हों इसमें उनकी समन्वयवृत्ति अधिक रम गयी और स्वभावोक्ति बिचारी अलंकृति मात्र होकर छूट गयी। वाङ्मय के विस्तृत आभोग में उसका क्या क्रियाकलाप हो सकता है, इसके निरूपण के चक्कर में कोई पड़ा ही नहीं। यदि उसका भी उन्होंने विश्लेषण कर दिया होता तो भारतीय आधुनिक साहित्य में जिस चरित्रचित्रण का विचार अंग्रेजी साहित्य के आधार पर होता है, उसके लिए भारतीय साहित्यशास्त्र की परम्परा में भी कुछ विवेचित सामग्री मिल जाती और समालोचना का कार्य उधार खाते न चलता।

हिन्दी में स्वच्छंदता का उन्मेष केवल आधुनिक युग में ही नहीं हुआ है। उसके प्राचीन साहित्य में भी उसके कण बराबर रहे हैं। आदि युग में विद्यापति स्वच्छंदवृत्ति-संपन्न प्रातिभ दृगोचर होते हैं। पर कथाबंध के क्षेत्र में उनका महान प्रयास नहीं हुआ। मुक्तक के क्षेत्र में ही वे अधिक विचरण करते रहे, इसलिए वह स्वच्छंदता इतनी उभर कर सामने नहीं आयी जितनी के आने उन्हें सर्वात्मना स्वच्छंद घोषित किया जा सकता। मुक्तक के क्षेत्र में उन्होंने सौन्दर्यभेद और भावनाभेद दोनों में स्वच्छंदता दिखाई है। भक्तिकाल में सूरदास, तुलसीदास और मलिक मुहम्मद जायसी में भी साफ़ स्वच्छंदता लक्षित होती है। रसखान और मीरा स्वच्छंद वृत्ति के ही प्रातिभ हैं। हिन्दी के प्राचीन काव्य में स्वच्छंदता के स्वरूपविकास पर किसी ने अभी तक शोधकार्य नहीं किया है, यद्यपि आधुनिक युग में सर्वत्र

मनमानी स्वच्छंदता की खोज बहुत की गयी है, हिन्दी की मध्यकालीन काव्यधारा में स्पष्ट स्वच्छंदता के दर्शन श्रृंगारयुग या रीतिकाल में होते हैं जिसकी घोषणा मैंने पहले ही कर दी थी और बड़े हर्ष एवं संतोष का विषय है कि अब हिन्दी के प्रत्येक आधुनिक मुनि ने अन्यत्र मतभेद रखते हुए भी इस स्वच्छंदता की सर्वात्मना स्वीकृति दे दी है। इस स्वच्छंदता पर कुछ शोध कार्य भी हुआ है। हिन्दी के मनीषियों के प्रति मैं व्यक्तिगत रूप से इसके लिए कृतज्ञ हूँ पर स्वच्छंदता की जड़ें दूर तक फैली हुई हैं। बिना श्रममूलक खोज या खोद किये उन जड़ों का अवस्थान सामने नहीं आयेगा। मुझे विश्वास है कि हिन्दी के अनुसंधित्सुओं में से कभी कोई अवश्य जड़िमा का परित्याग करके इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य करेगा।

आधुनिक युग में कथाबंध के आधार पर बने काव्य में सबसे पहले श्री रामनरेश त्रिपाठी ने स्वच्छंदता दिखायी। पर उनके कथाबंध लघुकाय हैं। वृहत्काय या महाकाय कथाबंध में वस्तु (कथा)गत स्वच्छंदता दिखाने का सहस्र हिन्दी के परम स्वतन्त्र प्रातिभ को भी नहीं हो सका। यद्यपि कामायनी में अन्यापदेश की रहस्यात्मक स्थिति निर्माता ने स्वीकार की है, पर उसके वृत्त को अपनी ओर से ऐतिहासिक या ख्यात ही घोषित किया है। रहस्य को गौण ही माना है। अप्रस्तुत ही कहा है। इसलिए इस क्षेत्र में पूर्ण स्वतंत्रता से प्रविष्ट होने का साहसपूर्ण पदन्यास एक प्रकार से प्रतीक्षित था। यही कार्य आधुनिक हिन्दी-काव्यधारा में हमारे सुपरिचित प्रातिभ श्री गुलाब ने अपनी प्रस्तुत कृति में किया है। गद्य के क्षेत्र में भारतीय परम्परा ने कल्पित कथावृत्त रखने का चलन बहुत प्राचीन कल्प में ही कर लिया गया था। महाभाष्य में सुमनोत्तरा, भैमरथी और वासवदत्ता नामक जिन कृतियों के नामों की निरुक्ति की गयी है वे गद्यकाव्य ही हैं और बाण की कादम्बरी तथा सुबंधु की वासवदत्ता की पूर्ववर्तिनी है।

पद्य के क्षेत्र में ख्यातवृत्त का परित्याग प्राचीन कवि तो इसी से नहीं करते थे कि रसस्थिति लाने में उससे विशेष सहायता मिलती है। पर जब आधुनिक युग में रसाभिव्यक्ति पर से दृष्टि हटकर चरित्रचित्रण में जा लगी है और स्वभावोक्ति या शीलनिदर्शन ही मुख्यतया प्रतिपाद्य हो गया है तब ख्यातवृत्त का संग्रह या त्याग वैसा महत्त्व नहीं रखता। प्राचीन प्रातिभ नवोन्मेष के रूप में शास्त्रीय बंधन से यथावांछित रूप में स्वच्छंद होकर चलते थे, इसका प्रयोजन कोई वाद नहीं था। स्वच्छंदतावाद के रूप में कोई मतगत वैभिन्य नहीं आया था। हिन्दी के मध्यकालिक रीतिमुक्त या स्वच्छंदतामार्गी रचयिताओं में मत या वाद का कुछ-कुछ स्पष्ट संकेत मिलता है। शास्त्रीय स्वच्छंदता का तात्पर्य किसी प्रकार का बंधन अस्वीकृत करना नहीं था। शास्त्रीय बंधन के कारण जहाँ विषय की वर्णता में अभिनिवेश और भावानुभूति की व्यंजना में तल्लीनता की रुकावट आती थी वहीं उसको खोल दिया जाता था। इससे प्रतिभा अनुभूतिमय हो जाती थी। उन्मुक्त वाग्धारा प्रवाहित होने लगती थी। जिस धारा को व्यवस्थित करने के प्रयास में वह लग ही नहीं सकता था, स्वयं उसमें प्रवाहित होने लगता था। इसी तदाकृति और तन्मयता को लक्ष्य कर घनानंद ने कहा था कि “लोग हैं लागि कवित्त बनावन, मोहि तो मेरे कवित्त बनावत”।

प्रस्तुत कृति में भी शास्त्रीयता का व्यामोह इसी प्रयोजन से छोड़ दिया गया है। प्रबंध काव्य में वस्तुगत रूढ़ि का विसर्जन होने से वैसी क्षति नहीं होती। वस्तुगत घटना चक्र के प्रवर्तन में उपन्यासकार अनिवार्य रूप से लगता है। प्रबंधकाव्य में घटनाचक्र का नहीं भावचक्र का प्रवर्तन ही प्रधान होता है। बाण की कादम्बरी में घटनाचक्र का प्रवर्तन मुख्य नहीं है, भले ही कथा कल्पित हो। इसलिए वह उपन्यास नहीं है। उसमें उपन्यास का एक ही विशिष्ट तत्त्व मिलता है कि वस्तु की नूत्रता है। भाव-चक्र की गति सँभालने के ही कारण उसमें पदन्यास की मंथरता है। कवि को यह चिंता नहीं

है कि वस्तु क्रमशः और शीघ्र नवीन मोड़ ले। वहाँ भावधारा की गति मंथर होती है और घटना-चक्र की गति प्रवेग। यदि ऐसा न माना जाय तो फिर प्रबंधकाव्य और उपन्यास में वस्तु की दृष्टि से कोई भेद नहीं रह जायगा। इसी विभेद को दृष्टिपथ में रखने के कारण उपन्यासों का ऐतिहासिक विकास सूचित करते हुए कुछ लोगों ने कादम्बरी को भी उपन्यास कह डाला है और किसी ने पद्मावत को भी उपन्यास का हिन्दी में पूर्ववर्ती रूप मान लिया है। लक्ष्यभेद से ही स्वरूपभेद होता है।

श्री गुलाब के इस नए प्रयोग को स्वच्छंदतावाद की हठधर्मिता में नहीं मानता। इसका हेतु यही है कि वर्णना और भावगत चर्वणा से वे कहीं पराङ्मुख नहीं हैं। उपसंहृति त्रासद होने से भी कुछ भारतीय साहित्य परम्परा के पक्षधर इसके प्रति कदाचित्त सुमुखता न दिखा सकें, पर 'एको रसः करुण एव निमित्त भेदात्' कहनेवाले भी तो यहीं की परंपरा में थे। किसी रूढ़ि का सुतरां परित्याग किया जा सकता है। पर परम्परा पूर्णतया नहीं त्यागी जा सकती। श्रीगुलाब ने रूढ़ियों का बंधन खोल दिया है नूतन उत्फुल्ल विकास के लिए, पर परम्परा के काँटों को अपनी रक्षा के लिए बनाए रखा है। मार्मिक मधुव्रत उषा में मधुपान करें, अवधानतापूर्वक, यही अभिलाषा है, यही आशीर्वचन है।

मकर संक्रांति २०२१
बनारस कोठी
गायत्री घाट, गया

विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
अध्यक्ष हिन्दी विभाग
अधिष्ठाता, साहित्यसंकाय
मगध विश्वविद्यालय, गया